श्री साईसच्चरित

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। अध्याय २६ वा।।

।। श्रीगणेशाय नमः।। श्रीसरस्वत्यै नमः।। श्रीगुरुभ्यो नमः।। श्रीकुलदेवतायै नमः।। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः।। श्रीसद्गुरुसाईनाथाय नमः।। भूतभौतिक विषयजात। हें अखिल विश्व निजांतर्गत। दर्पणी नगरीसें प्रतिबिंबित। मायाविजृंभित मायिक।।१।। वस्तुगत्या अनुद्भूत। आत्मस्वरूपीं अनुस्यूत। तें हें विश्व स्वरूपीं स्थित। दिसे उद्भूत चराचर।।२।। जें जें कांही आरिसां दिसे। तें तें वास्तव तेथें नसे। जैसें वासनामय निद्रेंत आभासे। परी तें नासे प्रबोधीं।।३।। जागृदवस्था प्राप्तकाळें। स्वप्नोपलब्ध प्रपंच वितळे। अद्वयानंदप्रकाश विवळे। महावाक्यमेळें सद्गुरुच्या।।४।। विश्वाचें जें सत्ता-स्फुरण। तयाचें अन्यनिरपेक्ष अधिष्ठान। तो गुर्वात्मा ईश्वर जैं प्रसन्न। तयींच साक्षात्कारण हें।।५।। स्वप्रकाश सदात्मक। तें हें आत्मस्वरूप देख। तेथें हें विश्व भूतभौतिक। मायाकौतुक हा खेळ।।६।। आब्रह्मस्तंबपर्यंत। भूतभौतिक हें सर्व कल्पित। ऐसें हें विस्तारलें जगत। मायाविजृंभित केवळ।।७।। सर्प-माला-दंड-धारा। स्वरूपज्ञानें मानिती दौरा। तैसाचि हा सकळ जगत्पसारा। स्वरूपीं थारा नाहीं या।।८।। हें दृश्यजात मायामय। तत्त्वज्ञानें यासी लय। गुरुवाक्य-प्रबोध-समय। प्राप्त हो त्या काळीं।।९।। तृतीय पुरूष एकवचनी। 'गृणाति' रूपार्थ धरितां मनीं। शिष्यास तत्त्वोपदेशदानीं। गुरु एक जनीं समर्थ।।१०।। म्हणवूनि प्रार्थू कीं बाबांप्रत। करावी बुद्धि अंतरासक्त। नित्यानित्यविवेकयुक्त। वैराग्यरत मज करीं।।११।। मी तों सदा अविवेकी मूढ। आहें अविद्याव्यवधाननिगूढ। बुद्धि सर्वदा कुतर्करूढ। तेणेंचि हें गूढ पडलें मज।।१२।। गुरुवेदान्तवचनीं भरंवसा। ठेवीन मी अढळ ऐसा। करीं मन जैसा आरसा। निजबोधठसा प्रकटेल।।१३।। वरी सद्गुरो साईसमर्था। करवीं या ज्ञानाची अन्वर्थता। विनाअनुभव वाचाविग्लापनता। काय परमार्था साधील।।१४।। म्हणोनि बाबा आपुल्या प्रभावें। हें ज्ञान अंगें अनुभवावें। सहज सायुज्य पद पावावें। दान हें द्यावें कृपेनें।।१५।। तदर्थ देवा सद्गुरसाई। देहाहंता वाहतो पायीं। आतां येथून तुझें तूं पाहीं। मीपण नाहींच मजमाजीं।।१६।। घेईं माझा देहाभिमान। नलगे सुखदुःखाची जाण। इच्छेनुसार निजसूत्रा चालन। देऊनि मन्मन आवरीं।।१७।। अथवा माझें जें मीपण। तेंचि स्वयें तूं होऊनि आपण। घेईं सुखदुःखाचें भोक्तेपण। नको विवंचन मज त्याचें।।१८।। जय जयाजी पूर्णकामा। जडो तुझियाठायीं प्रेमा। मन हें चंचल मंगलधामा। पावो उपरमा तव पायीं।।१९।। तुजवांचूनि दुजा कोण। सांगेल आम्हांस हितवचन। करील आमुचें दुःखनिरसन। समाधान मनांचे।।२०।। दैव शिरडीचें, म्हणूनि झालें। बाबा तेथें आगमन आपुलें। पुढें तेथेंच वास्तव्य केलें। क्षेत्रत्व आणिलें त्या स्थाना।।२१।। धन्य शिरडीचें सुकृत। कीं हा साई कृपावंत। करी या स्थळा भाग्यवंत। अलंकृत निजवास्तव्यें।।२२।। तूंचि माझा चेतविता। तूंचि माझा वाचा चाळिता। तैं मी कोण तव गुण गाता। कर्ता-करविता तूं एक।।२३।। तुझा नित्य समागम। हाचि आम्हां आगम-निगम। तुझें नित्य चरित्रश्रवण। हेंचि पारायण आमुतें।।२४।। अनिमेष तुझें नामावर्तन। हेंचि आम्हां कथाकीर्तन। हेंचि आमुचें नित्यानुसंधान। हेंचि समाधन आम्हांतें।।२५।। नलगे आम्हां ऐसें सुख। जेणें होऊं भजनविन्मुख। याहूनि अधःपतन तें अधिक। परमार्थबाधक काय असे।।२६।। आनंदाश्रू उष्ण जीवन। करूं तेणें चरणक्षालन। शुद्धप्रेम चंदनचर्चन। करवूं परिधान सच्छ्रद्धा।।२७।। हें अंतरंग पूजाविधान। बाह्योपचार पूजेहून। येणें तुज सुप्रसन्न। सुखसंपन्न करूं कीं।।२८।। सात्त्विकअष्टभाव-कमल। अष्टदल अतीव निर्मल। मन करूनि एकाग्र अविकल। वाहूं, निजफल संपादूं।।२९।। लावूं भावार्थ-बुका भाळा। बांधूं दृढभक्तीची मेखळा। वाहूं पादांगुष्ठीं गळा। भोगूं सोहळा अलोलिक।।३०।। प्रीतिरत्नालंकारमंडण। करूं सर्वस्व निंबलोण। करूं पंचप्राण चामरांदोलन। तापनिवारण तन्मय छत्रें।।३१।। समर्पूं ऐसी स्वनंद पूजा। अष्टांग गंध-अर्गजा। ऐसे आम्ही आमुच्या काजा। साईराजा पूजूं तुज।।३२।। अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थ। स्मरूं नित्य ''साईसमर्थ''। याच मंत्रें साधूं परमार्थ। होऊं कृतार्थ निजनिष्ठा।।३३।। पूर्वील अध्यायीं कथन। साईसमर्थ दयाधन। साधावयास निजभक्तकल्याण। कैसें शिक्षण देत ते।।३४।। आतां ये अध्यायीं निरूपण। भक्तां स्वगुरुपदीं स्थापन। कवणेपरी करीत जाण। कथाविंदान तें परिसा।।३५।। गताध्यायांती निदर्शित। भक्तपंतकथामृत। श्रोतां परिसिजे दत्तचित्त। तत्त्व निश्चित व्हावया।।३६।। कैसे कैसे अनुभव दाविले। कैसें नेत्रीं निष्ठांजन सुदिलें। कैसें स्वगुरुपदीं अढळ केलें। मन निवालें कैसेनी।।३७।। एकदां एक बहुत श्रमें। भक्त एक पंत नामें। गेले शिरडीस मित्रसमागमें। दर्शनकामें साईंच्या।।३८।। ते पूर्वील अनुगृहीत। होते निजगुरुपदीं स्थित। शिरडीस जावें किंनिमित्त। झाले शंकित मानसीं।।३९।। तथापि जयाचा जैसा योग। तैसा अकल्पित घडतो भोग। आला साईदर्शनाचा ओघ। जाहला अमोघ सुखदायी।।४०।। आपण कल्पावी एक योजना। ईश्वराच्या आणीकचि मना। अदृष्टापुढें कांहीं चालेना। तें स्वस्थ मना परिसिजे।।४१।। ठेवूनियां शिरडीचें प्रस्थान। कित्येक जन निजस्थानाहून। निघाले अग्निरथीं बैसून। सकळ मिळून आनंदें।।४२।। गाडींत जैं हे चढले अवचित। तेथेंच होते स्थित हे पंत। शिरडीस जाण्याचा तयांचा बेत। झाला अवगत पंतांस।।४३।। मंडळीत कांही पंतांचे स्नेही। त्यांतचि कांहीं विहिणी व्याही।

पंतांचे मनांत जाणें नसतांही। बळेंच आग्रहीं सांपडले।।४४।। अरंभीं पंतांचा विचार। जाणें होतें जेथवर। तिकीटही तयांचें तेथवर। पुढें तो विचार बदलला।।४५।। स्नेही व्याही म्हणती चला। जाऊं समवेत की शिरडीला। मनीं नसतांही आग्रहाला। होकार दिधला पंतांनी।।४६।। पंत उतरले विरारास। मंडळी गेली मुंबईस। उसने घेऊनि खर्चावयास। पंतही मुंबईस मग गेले।।४७।। मोडवेना मित्रांचे मन। मिळीविलें निजगुर्वनुमोदन। आले मग ते शिरडीलागून। सकल मिळून आनंदें।।४८।। गेले सर्व मशिदीस। सकाळीं अकराचे समयास। दाटी भक्तांची पूजनास। पाहूनि उल्हास वाटला।।४९।। पाहूनि बाबांचें ध्यान। जाहले सकळ आनंदसंपन्न। इतुक्यांत पंतांस झीट येऊन बेशुद्ध होऊन ते पडले।।५०।। पातली जीवास विकलता। पावले सबळ निचेष्टता। सांगातियां उद्भवली चिंता। अति व्यग्रता मानसीं।।५१।। मंडळींची मदत मोठी। साईबाबांची कृपादृष्टी। करितां मस्तकीं उदकवृष्टी। गेली निचेष्टितता समूळ।।५२।। होऊनियां सावधान। उठूनि बैसले खडबडोन। वाटलें जणूं झोंपेंतून। आतांच ऊठून बैसले।।५३।। बाबा पूर्ण अंतर्ज्ञानी। तयांची गुरुपुत्रता जाणुनी। तयांस अभयता आश्वासुनी। निजगुरुभजनीं स्थापिती।।५४।। येवो म्हणती प्रसंग काहीं। ''अपना तकिया छोडना नहीं। सदासर्वदा निश्चळ राहीं। अनन्य पाहीं एकत्वीं''।।५५।। पंतांना ती पटली खूण। निजगुरुचें जाहलें स्मरण। साईबाबांचें कनवाळूपण। राहिलें स्मरण जन्माचें।।५६।। तैसेच एक मुंबापुरस्थ। हरिश्चंद्र नामें गृहस्थ। पुत्र अपस्मारव्यथाग्रस्त। तेणें अति त्रस्त जाहले।।५७।। देशी विदेशी वैद्य झाले। कांही एक उपाय न चले। पाहूनि सर्वांचे प्रयत्न हरले। राहतां राहिले साधुसंत।।५८।। सन एकोणीसशें दहा सालीं। दासगणूंची कीर्तनें झालीं। श्रीसाईनाथांची कीर्ति पसरली। यात्रा वाढली शिरडीची।।५९।। कुग्राम परी भाग्यें थोर। शिरडी झाली पंढरपूर। महिमा वाढला अपरंपार। यात्रा अपार लोटली।।६०। रोग घालविती केवळ दर्शनें। अथवा केवळ हस्तस्पर्शनें। अथवा शुद्ध कृपावलोकनें। आले अनेकां अनुभव।।६१।। होतां अनन्यशरणागत। कृतकल्याण पावत भक्त। जाणूनि सकळांचें मनोगत। पुरवीत मनोरथ सर्वांचे।।६२।। उदीधारणें पिशाचें पळतीं। आशीर्वचनें पीडा टळतीं। कृपानिरीक्षणें बाधा चुकतीं लोक येती धांवोनिं।।६३।। ऐसें माहात्म कथाकीर्तनीं। दासगणूंच्या ग्रंथांतुनी। ऐकोनियां कर्णोपकर्णीं। उत्कंठा दर्शनीं उदेली।।६४।। सवें घेऊनि मुलेंबाळें। नानाविध उपायनें फळें। आले शिरडी ग्रामास पितळे। पूर्वार्जितबळें दर्शना।।६५।। मुलास पायांवरी घातलें। स्वयें बाबांस लोटांगणीं आले। तों तेथ एक विपरीत वर्तलें। पितळे गडबडले अत्यंत।।६६।। दृष्टादृष्ट साईंची होतां। मुलगा पावला बेशुद्धावस्था। डोळे फिरविले पडला अवचिता। मातापिता गडबडले।।६७।। पडिला विसंज्ञ भूमीसी। तोंडासी आली उदंड खरसी। चिंता ओढवली मातापित्यांसी। काय दैवासी करांवे।।६८।। निघूनि गेला वाटे श्वास। तोंडावाटे चालला फेंस। फुटला घाम सर्वांगासी। सरली आंस जीविताची।।६९।। ऐसे झटके अनेक वेळां। पूर्वी येऊनि गेले मुलाला। परी न इतुका विलंब झाला। प्रसंगाला एकाही।।७०।। हा ''न भूतो न भविष्यति''। यानें आणिली प्राणांतिक गति। मातेच्या डोळां अश्रू न खळती। पाहूनि स्थिति बाळाची।।७१।। आलों किमर्थ झालें काय। उपाय तो झाला अपाय। ऐसे घातुक व्हावें हे पाय। व्यर्थ व्यवसाय झाला कीं।।७२।। घरांत रिघावें चोराभेणें। तों घरचि अंगावर कोसळणें। तैसेंचि कीं हें आमुचें येणें। झालें म्हणे ती बाई।।७३।। व्याघ्र भक्षील म्हणूनि गाई जीवाभेणें पळूनि जाई। तिजला मार्गांत भेटे कसाई। तैसेंच पाहीं जाहलें।।७४।। भाव ठेवूनि देवावरी। पूजेस जातें देउळाभीतरीं। देऊळचि कोसळे अंगावरी। तैसीच परी हे झाली।।७६।। बाबा मग तयां आश्वासिती। ''धीर धरावा थोडा चित्ती। मुलास उचलूनि न्या निगुती। निजावगती तो लाधेल।।७७।। मुलास घेऊनि जा बिऱ्हाडीं। आणीक एक भरतां घडी। सजीव होईल तयाची कुडी। उगीच तांतडी करूं नका''।।७८।। असो पुढें तैसें केलें। बोल बाबांचे खरे झाले। पितळे सहकुटुंब आनंदले। कुतर्क गेले विरोन।।७९।। वाडियांत नेतां तो कुमर। तात्काळ आला शुद्धीवर। मातापितयांचा फिटला घोर। आनंद थोर झाहला।।८०।। मग पितळे स्त्रियेसहित। बाबांचिया दर्शना येत। करीत साष्टांग प्रणिपात। अति विनीत होऊनी।।८१।। उठला पाहूनि आपुला सुत। साभार मानसी आनंदित। बसले बाबांचे चरण चुरीत। बाबा सस्मित पूसती।।८२।। ''कां त्या संकल्पविकल्पलहरी। शांत झाल्या कां आतां तरी। ठेवील निष्ठा धरील सबूरी।। तयासी श्रीहरी रक्षील''।।८३।। पितळे मूळचेच श्रीमंत। घरंदाज लौकिकवंत। मेवामिठाई लुटवीत। बाबांस अप्रित फळ पान।।८४।। कूटूंब तयांचे फार सात्त्विक। प्रेमळ श्रद्धाळू भाविक। बाबांकडेस लावूनि टक। खांबानिकट बैसतसे।।८५।। पहातां पहातां डोळे भरावे। ऐसें तिनें नित्य करावें। पाहूनि तत्प्रेमाचे नवलावे। अत्यंत भूलावें बाबांनी।।८६।। जैसे देव तैसेच संत। भक्तपराधीन ते अत्यंत। अनन्यत्वें तयां जे भजत। कृपावंत तयांवरी।।८७।। असो ही मंडळी जावया निघाली। मशिदीस दर्शनार्थ आली। बाबांची अनूज्ञा उदी घेतली। तयारी केली निघावया।।८८।। इतुक्यांत बाबा काढीती तीन। रूपये आपुले खिशांतून। पितळ्यांस निकट बोलावून। बोलती वचन तें परिसा।।८९।। ''बापू तुजला पूर्वी दोन। दिधलेती म्यां त्यांत हे तीन। ठेवूनि यांचें करीं पूजन। कृतकल्याण होसील''।।९०।। पितळे रूपये घेती करीं। प्रसाद जाणोनिं आनंदे स्वीकारी। लोटांगणी येत पायांवरी। म्हणती कृपा करीं महाराजा।।९१।। मनीं उदेली विचारलहरी। माझी तों ही प्रथम फेरी। बाबा हें वदती काय तरी। हें मज निर्धारी कळेना।।९२।। बाबांस पूर्वी नाही देखिले। पूर्वी दोन कैसे दिधले। अर्थावबोध कांहींच न कळे। विस्मित पितळे मनीं झाले।।९३।। कैसी व्हावी परिस्फुटता। वाढली मनाची जिज्ञासुता। बाबा न लागूं देत पत्ता। राहिली मुग्धता तैसीच।।९४।। संत सहज उद्गारले जरी। तरी ते वाणी होणार खरी। जाणीव ही पितळ्यांचे अंतरी। म्हणूनि विचारीं ते पडले।।९५।। परी पुढें हे मुंबापुरीं। गेले जेव्हां आपुले घरीं। होती घरांत एक म्हातारी। जिज्ञासा पुरी ती करी।।९६।। म्हातारी पितळ्यांची माता। सहज शिरडीचा वृत्तांत पुसतां। निघाली तीन रूपयांची वार्ता। संबंध कथा जुळेना।।९७।। विचार करितां स्मरण झालें। मग म्हातारी पितळ्यांस बोले। आतां मज यथार्थ आठवलें। बाबा बोलले सत्य तें।।९८।। आतां त्वां तुझ्या मुलास नेलें। शिरडीस साईंचे दर्शन करविलें। तैसेंच पूर्वी तुज पित्यानें वहिलें। होतें

नेलें अक्कलकोटीं।।९९।। तेथील महाराजही सिद्ध। परोपकारी महाप्रसिद्ध। अंतर्ज्ञानी योगी प्रबुद्ध। पिताही शुद्ध आचरणीं।।१००।। घेवोनि तव पित्याची पूजा। प्रसन्न झाला योगीराजा। दोन रूपये प्रसादकाजा। दिधले पूजा कराया।।१०१।। हेही पूर्वील रूपये दोन। स्वामींनी बाळा तुजलागोन। दिधले होते प्रसाद म्हणून। पूजनार्चन करावया।।१०२।। तुमचें देवदेतार्चन। त्यांत हे होते रूपये दोन। करीत असत नेमें पूजन। अति निष्ठेनें वडील तुझे।।१०३।। तयांची निष्ठा मी एक जाणें। वागत गेले निष्ठेप्रमाणें। तयांच्या पश्चात पूजाउपकरणें। जाहलीं खेळणी मुलांची।।१०४।। निष्ठा उडाली देवांवरची। लाज वाटूं लागली पूजेची। पूजेसी योजना झाली मुलांची। दाद रूपयांची कोण घेई।।१०५।। ऐसीं कित्येक वर्षे लोटलीं। रूपयांची त्या बेदाद झाली। आठवणही साफ बुजाली। जोडी हरवली रूपयांची।।१०६।। असो तुमचें भाग्य मोठें। साईमिषें महाराजचि भेटे। पुसावया विस्मरणांची पुटें। तैसींच संकटें निरसाया।।१०७।। तरी आतां येथूनि पुढें। सोडूनि द्यावे तर्क कुडे। पहा आपल्या पूर्वजांकडे। नको वांकडे व्यवहार।।१०८।। करीत जा रूपयांचें पूजन। संतप्रसाद माना भूषण। समर्थसाईंनी ही पटविली खूण। पुनरूज्जीवन भक्तीचें।।१०९।। ऐकतां ही मातेची कथा। परमानंद पितळ्यांचे चित्ता। ठसली साईंची व्यापकता। आणि सार्थकता दर्शनाची।।११०।। मातेचें तें शब्दामृत। नष्ट भावना करी जागृत। देई पश्चाताप-प्रायश्चित्त। भावी हित दर्शवी।।१११।। असो होणार होऊनि गेलें। पुढें कार्यार्था संतीं जागविलें। मानूनि तयांचे उपकार भले। सावध राहिले निजकार्या।।११२।। ऐसीच एक आणिक प्रचीती। कथितों परियेसा स्वस्थ चित्तीं। भक्तांच्या उच्छृंखल मनोवृत्ती। बाबा आवरिती कैशा तें।।११३।। गोपाळ नारायण आंबेडकर। नामें एक भक्तप्रवर। आहे बाबांचा पुणेंकर। परिसा सादर तत्कथा।।११४।। आंग्लभौमसरकारपदरीं। अबकारी-खात्यांत होती नोकरी। दहा वर्षे भरतां पूरीं। बैसले घरीं सोडूनि।।११५।। दैव फिरलें झालें पारखें। सर्व दिवस नाहींत सारखे। आले ग्रहदशेचे गरके। कोण फरके न भोगितां।।११६।। आरंभी ठाणें जिल्ह्यांत नोकर। पुढें नशीबीं आलें जव्हार। होते तेथें अम्मलदार। तेथेंच बेकार जाहले।।११७।। नोकरी आळवावरचें पाणी। पुनश्च पडावें कैसें ठिकाणीं। प्रयत्नांची शिकस्त त्यांनी। पाहिली करूनि त्या वेळीं।।११८।। परी न आलें तयांही यश। निश्चय ठरला राहावें स्ववश। आपत्तीचा झाला कळस। जाहले हताश सर्वांपरी।।११९।। वर्षानुवर्ष खालीं खालीं। सांपत्तिक स्थिति खालावली। आपत्तीवर आपत्ती आली। दुःसह झाली गृहस्थिति।।१२०।। ऐसीं गेलीं वर्षे सात। सालोसाल शिरडीस जात। बाबांपुढें गाऱ्हाणें गात। लोटांगणीं येत दिनरात्र।।१२१।। एकोणीसशें सोळा सालांत। वैतागूनि गेले अत्यंत। वाटलें करावा प्राणघात। शिरडी क्षेत्रांत जाऊनि।।१२२।। कुटुंबसमवेत या समयास। राहिले शिरडीस दोन मास। काय वर्तलें एके निशीस। तया वार्तेस परियेसा।।१२३।। दीक्षितांचे वाड्यासमोर। एका बैलाचे गाडीवर। बसले असतां आंबडेकर। चालले विचारतरंग।।१२४।। कंटाळले ते जीवितास। वृत्ति झाली अत्यंत उदास। पुरे आतां हा नको त्रास। सोडिली आंस जीविताची।।१२५।। करूनियां ऐसा विचार। होऊनियां जिवावरी उदार। विहिरींत उडी घालावया तत्पर। आंबडेकर जाहले।।१२६।। दुसरें कोणी नाहीं जवळा। साधूनियां ऐसी निवांत वेळा। पुरवीन आपुले मनाचा सोहळा। दुःखावेगळा होईन।।१२७।। आत्महत्येचें पाप दुर्धर। तरी हा दृढ केला विचार। परी बाबा साई सूत्रधार। तेणें हा अविचार टाळिला।।१२८।। तेथेंचि चार पावलांवर। एका खाणावळवाल्याचें घर। तयासही बाबांचा आधार। तोही परिचारक बाबांचा।।१२९।। सगुण येऊनि उंबऱ्यावरती। पुसे आंबडेकरांस ते वक्तीं। ही अक्कलकोट महाराजांची पोथी। वाचिली होती कां कधीं।।१३०।। पाहूं पाहूं काय ती पोथी। म्हणूनि आंबडेकर हातीं घेती। सहज पानें चाळूनि पाहती। वाचूं लागती मध्येंच।।१३१।। कर्मधर्मसंयोग कैसा। विषयही वाचावया आला तैसा। अंतर्वृत्तींत वाचण्यासरिसा। उमटला ठसा तात्काळ।।१३२।। सहजासहजीं आली जी कथा। निवेदितों मी श्रोतियां समस्तां। तात्पर्यार्थें अति संक्षेपता। ग्रंथविस्तरताभयार्थ।।१३३।। अक्कलकोटीं संतवरिष्ठ। असतां महाराज अंतर्निष्ठ। भक्त एक बहु व्याधिष्ट। दुःसह कष्ट पावला।।१३४।। सेवा केली बहुत दिन। व्याधिविहीन होईन म्हणून। होईनात ते कष्ट सहन। अति उद्विग्न जाहला।।१३५।। करूनि आत्महत्येचा निर्धार। पाहूनियां रात्रीचा प्रहर। जाऊनि एका विहीरीवर। केला शरीरपात तेणें।।१३६।। इतुक्यांत महाराज तेथें आले। स्वहस्तें तयास बाहेर काढिलें। ''भोक्तृत्व सारें पाहिजे भोगिलें''। उपदेशिलें तयास।।१३७।। आपुले पूर्वकर्माजोग। व्याधि कुष्ठ क्लेश वा रोग। जाहल्यावीण पूर्ण भोग। हत्यायोग काय करी।।१३८।। हा भोग राहतां अपुरा। जन्म घ्यावा लागे दुसरा। म्हणूनि तैसेच साहें कष्ट जरा। आत्महत्यारा होऊं नको।।१३९।। वाचूनि ही समयोचित कथा। थक्क जाहले आंबडेकर चित्तां। जागींच वरमले अवचिता। बाबांची व्यापकता पाहूनि।।१४०।। आंबडेकर मनीं तरकले। पूर्व अदृष्ट पाहिजे भोगिलें। हेंच योग्य प्रसंगीं सुचविलें। साहस योजिलें न भलें तें।।१४१।। जैसी वाचा अशरीरिणी। तैसीच या दृष्टांताची करणी। हेत जडला साईंचे चरणीं। अघटित घटणी साईंची।।१४२।। सगुणमुखें साईंचा इशारा। हा अकल्पित पुस्तकद्वारा। यावया विलंब लागता जरा। होता मातेरा जन्माचा।।१४३।। मुकलों असतों निजजीविता। करितों दुर्धर कुटुंबघाता। स्त्रियेवरी ओढवितों अनर्था। स्वार्था परमार्था नागवतों।।१४४।। पोथीचें करूनियां निमित्त। बाबांनीं केलें सगुणास प्रवृत्त। आत्मघातापासाव चित्त। परावृत्त केलें कीं।।१४५।। प्रकार ऐसा जरी न घडता। बिचारा व्यर्थ जिवास मुकता। परी जेथें साईंसम तारिता। काय तो मारिता मारील।।१४६।। अक्कलकोट-स्वामींची भक्ती। या भक्ताचे वडिलांस होती। तीच पुढें चालवा ही प्रचीती। आणूनि देती त्या बाबा।।१४७।। असो पुढें बरवें झालें। हेही दिवस निघून गेले। ज्योतिर्विद्येंत परिश्रम केले। फळही आलें उदयाला।।१४८।। साईकृपाप्रसाद पावले। पुढें आले दिवस चांगले। ज्योतिर्विद्येत प्रावीण्य संपादिलें। दैन्य निरसलें पूर्वील।।१४९।। वाढलें गुरुपदीं प्रेम। जाहलें सुख कुशल क्षेम। लाधलें गृहसौख्य आराम। आनंद परम पावले।।१५०।। ऐसे अगणित चमत्कार। एकाहूनि एक थोर। कथितां होईल ग्रंथविस्तार। तदर्थ सार कथियेलें।।१५१।। हेमाड साईपदीं शरण। पुढील अध्यायीं गोड कथन।

विष्णुसहस्रनामदान। शामयालागून दीधलें।।१५२।। नको नको म्हणतां शामा। बाबांस अनिवार तयांचा प्रेमा। बळेंच देतील सहस्रनामा। सुंदर माहात्म्या वर्णून।।१५३।। आतां सादर परिसा ती कथा। अनुग्रहाचा समय येतां। शिष्याची इच्छा मुळींही नसतां। बाबा तो देतां दिसतील।।१५४।। अनुग्रहाची अलौकिक परी। कैसी असते सद्‌गुरुघरीं। दिसूनि येईल अध्यायांतरीं। श्रोतां आदरीं परिसिजे।।१५५।। कल्याणाचें जें कल्याण। तो हा साई गुणनिधान। सभाग्य पुण्यश्रवणकीर्तन। चरित्र पावन जयांचें।।१५६।। स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। अपस्माराहत्यानिवारणं तथा निजगुरुपदस्थिरीकरणं नाम षड्‌विंशतितमोऽध्यायः संपूर्णः।

।। श्रीसद्‌गुरुसाईनाथार्पणमस्तु।। शुभं भवतु।।